Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.gisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2024 GISRRJ | Volume 7 | Issue 2 | ISSN : 2582-0095

प्राचीन भारतीय संस्कृति में धर्म की अवधारणा

श्री लोकेश कुमार मीना

एम.ए.(इतिहास) NET, राजस्थान विश्वविद्यालय ,जयपुर (राज.)

Article Info
Article History
Accepted : 25 March 2024
Published : 05 April 2024

Publication Issue :
Volume 7, Issue 2
March-April-2024

Page Number : 47-56

शोध-सार(Abstract):- व्यास का कथन है कि "धारणात् धर्म इत्याहु "[1] अर्थात् यह कहा जाता है कि धर्म वही है जिसे धारण किया जाता है। समाज में व्यक्ति जीवन प्रति जो धारणा बनाता है या धारणा करता है वही धर्म है। धर्म संस्कृत के "धृ'' धातु से बना है जिसका अर्थ है जो धारण किया जाये। जब क्या धारण किया जाये स्पष्ट हो जाये तो वह धर्म बन जाता है। धर्म एक प्रकार से कर्त्तव्य के द्वारा कुछ समाजोपयोगी तथा आत्मोपयेगी बातों या गुणों को धारण करना कहा जा सकता है। जेम्स ने कहा है –''धार्मिक जीवन में आत्म समर्पण और त्याग को प्रोत्साहित किया जाता है और अनावश्यक बातो को इसलिये त्यागा जाता है, जिससे सुख की वृद्धि हो सके। इस प्रकार उन बातो को सरल और सुविधा जनक बनाता है, जो जीवन की प्रत्येक दशा में आवश्यक है।''[2] सनातन धर्म में चार पुरुषार्थ स्वीकार किए गये हैं जिनमें धर्म प्रमुख है। तीन अन्य पुरुषार्थ ये हैं- अर्थ, काम और मोक्ष।

कूटशब्द (Keywords):- धारणात्, धार्मिकता, प्रोत्साहित, भावनात्मक, परम्परात्मक, सांसारिक, पारलौकिक, समायोजन, पारिभाषिक, अभूतपूर्व , वैयक्तिक, प्रभावशाली, पुरातात्विक, उपनिषद्, आरण्यक, ब्रह्माण्ड, अलौकिक, सार्वभौमिक।

गौतम ऋषि कहते हैं – 'यतो अभ्युदयनिश्रेयस सिद्धि: स धर्म।'[3] (जिस काम के करने से अभ्युदय और निश्रेयस की सिद्धि हो वह धर्म है।)

मानव धर्म के दस लक्षण बताये हैं:

धृति: क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह:।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्मलक्षणम् ॥[4]

(धृति (धैर्य), क्षमा (दूसरों के द्वारा किये गये अपराध को माफ कर देना, क्षमाशील होना), दम (अपनी वासनाओं पर नियन्त्रण करना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (अन्तरंग और बाह्य शुचिता), इन्द्रिय निग्रह: (इन्द्रियों को वश मे रखना), धी (बुद्धिमत्ता का प्रयोग), विद्या (अधिक से अधिक ज्ञान की पिपासा), सत्य (मन वचन कर्म से सत्य का पालन) और अक्रोध (क्रोध न करना) ; ये दस मानव धर्म के लक्षण हैं।)

जो अपने अनुकूल न हो वैसा व्यवहार दूसरे के साथ नहीं करना चाहिये – यह धर्म की कसौटी है।

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License.

श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चैव अनुवर्त्यताम्।

आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत् ॥[5]

(धर्म का सर्वस्व क्या है, यह सुनो और सुनकर उस पर चलो ! अपने को जो अच्छा न लगे, वैसा आचरण दूसरे के साथ नही करना चाहिये।)

वात्सायन के अनुसार धर्म "वात्स्यायन ने धर्म और अधर्म की तुलना करके धर्म को स्पष्ट किया है। वात्स्यायन मानते हैं कि मानव के लिए धर्म मनसा, वाचा, कर्मणा होता है। यह केवल क्रिया या कर्मों से सम्बन्धित नहीं है बल्कि धर्म चिन्तन और वाणी से भी संबंधित है। [6]

महाभारत के वनपर्व (313/128) में कहा है–

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।[7]

तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥

मरा हुआ धर्म मारने वाले का नाश, और रक्षित धर्म रक्षक की रक्षा करता है। इसलिए धर्म का हनन कभी न करना, इस डर से कि मारा हुआ धर्म कभी हमको न मार डाले।

इसी तरह **भगवद्गीता** में कहा है–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥[8]

(कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि) जब–जब धर्म की ग्लानि (पतन) होता है और अधर्म का उत्थान होता है, तब तब मैं अपना सृजन करता हूँ (अवतार लेता हूँ)।

पूर्वमीमांसा में धर्म- पूर्व मीमांसा दर्शन का प्रधान विषय 'धर्म' है। धर्म की व्याख्या करना ही इस दर्शन का मुख्य प्रयोजन है। इसलिए धर्म जिज्ञासा वाले प्रथम सूत्र– 'अथातो धर्मजिज्ञासा' के बाद द्वितीय सूत्र में ही सूत्रकार ने धर्म का लक्षण बतलाया है– "चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः" अर्थात् प्रेरणा देने वाला अर्थ ही धर्म है (सैंडल, 1999) । कुमारिल भट्ट ने इसे 'धर्माख्यं विषयं वक्तुं मीमांसायाः प्रयोजनम्' ('धर्म' नामक विषय के बारे में बोलना मीमांसा का उद्देश्य है) रूप में अभिव्यक्त किया है ।[9]

अंग्रेजी में 'रिलीजन' शब्द की उत्पति लैटिन के दो शब्दों से हुयी – री और लीगर । इसका अर्थ है टू बाइन्ड बैक'' अर्थात् "सम्बन्ध स्थापित करना''। इस प्रकार, धर्म वह है जो सम्बन्ध स्थापित करता है। गिस्बर्ट ने लिखा है– "धर्म दोहरा सम्बन्ध स्थापित करता है: पहला मनुष्य और ईश्वर के बीच दूसरा – ईश्वर की संतान होने के कारण मनुष्य और मनुष्य के बीच''। धर्म के दो पक्ष आन्तरिक पक्ष में ईश्वर से सम्बन्धित मनुष्य के विचार, विश्वास और भावनायें आती है। बाण्य पक्ष में प्रार्थनायें और धार्मिक रीति रिवाज आते है। डासन ने स्पष्ट किया है –''जब कभी और जहॉ कही मनुष्य ऐसी बाण्य शक्तियो पर निर्भरता अनुभव करता है, जो रहस्यपूर्ण और मनुष्य की शक्तियों से कही अधिक उच्चतम मानी जाती है वही धर्म होता है।'' गिस्बर्ट के अनुसार – ''धर्म ईश्वर या सेवाओं के प्रति उसके उपर मनुष्य अपने को निर्भर अनुभव करता है, गतिशील, विश्वास एवं आत्म समर्पण है।

हीगले के अनुसार– "धर्म एक प्रकार का सावर्जनिक दर्शन है।'' **टेलर** का मत है कि – "धर्म आध्यात्मिक जीवों में विश्वास है।'' इस प्रकार का विचार **ह्वाइटहैड** ने व्यक्त करते हुये लिखा है कि " धर्म एक ऐसे तत्व का दर्शन है , जो हमारे परे पीछे

और भीतर है – जो वास्तविक (सत्य) है और जिसकी अनुभूति की प्रतीक्षा होती है –जो ऐसा तत्व है , जिसकी अन्तिम आदर्श रूप से आशा रहित खोज होती है।'' आध्यात्मिक दृष्टि से धर्म मूल्यों की खोज और धारण करना है।

कान्ट ने कहा है –''धर्म हमारे सामने कत्र्तव्यो को देवी आदेशों के रूप में मान्यता देने को कहता है।'' इस प्रकार धर्म कर्तव्यपालन है रामचरितमानस में कई प्रसंगों में कर्तव्य पालन को धर्म की संज्ञा दी गयी है। अभिपे्रतार्थ यह निकालना चाहिये कि "धर्म नैतिकता का श्रोत है। वहीं व्यक्ति नैतिक है ,जिसमे धर्म की भावना है । परन्तु नैतिकता धर्म का एक अंग है।''

धर्म का पोषण मनुष्य की भावनाओं से होता है। **हाकिंग** ने धर्म की "वह अन्तभाविना या प्रकृति कहा है जो अतं: प्रेरणा के साथ होती है। " **सालोमन रीनास** ने लिखा है कि–''धर्म इच्छाओं का योग है जो हमारी बौद्धिक शक्तियों के स्वतंत्र प्रयोग में बाधा डालती है।'' जबकी **फ्रायड** ने कहा है – "धर्म को मानवता की दबी हुई भावनाओं से प्रेरित विश्वव्यापी मानस विकार माना जाना चाहिये।'' भावना ने ही धर्म में कट्टरता उत्पन्न की जो वर्तमान में विश्व समाज के समक्ष अनसुलझी उलझन है और इसने कई बार विश्व की मानव जाती को संकट में डाला ।[10]

प्रस्तावना(Introduction):- धर्म को एक सस्ंथा के रूप में भी देखा जा सकता है क्योंकि इसका निर्माण सम्वेत रूप से समाज ने ही किया है और उनके वैचारिक भावनात्मक, परम्परात्मक एवं व्यवहारात्मक एकता पाई जाती है जिसका पालन उस धर्म के मानने वाले या संस्था के सदस्य करते है। धर्म को सदैव व्यापक अर्थ में स्वीकार करना चाहिए क्योंकि वह मानवता के प्रति व्यक्तिगण और सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक तथा सांसारिक लौकिक तथा पारलौकिक दोनों रूपों में विभिन्न कर्तव्यों के पालन में होता है। धर्म को धारण कर व्यक्ति का अस्तित्व एवं व्यक्तित्व दोंनों पुरा हों जाता है। धर्म जीवन के प्रति सर्वव्यापक सर्वदेशीय, सर्वकालिक दृष्टिकोणबनाता है। **ग्रैण्डमाइसन** लिखते है कि –"धर्म व्यक्तित्व और सामाजिक विश्वासों, स्थायी भावों और अभ्यासों का कुल योग है, जिसका अपना एक उदेश्य होता है, एक शक्ति जिसे मनुष्य सबसे बड़ा मानता है, जिस पर निर्भर रहता है और जिसके साथ वह संम्बन्ध स्थापित कर सकता है अथवा सम्बन्ध स्थपित कर लिया है।''

प्रमुख धर्म:- हिन्दू धर्म : सनातन धर्म पृथ्वी के सबसे प्राचीन धर्मों में से एक है; हालाँकि इसके इतिहास के बारे में अनेक विद्वानों के अनेक मत हैं। आधुनिक इतिहासकार हड़प्पा, मेहरगढ़ आदि पुरातात्विक अन्वेषणों के आधार पर इस धर्म का इतिहास कुछ हज़ार वर्ष पुराना मानते हैं। जहाँ भारत (और आधुनिक पाकिस्तानी क्षेत्र) की सिन्धु घाटी सभ्यता में हिन्दू धर्म के कई चिह्न मिलते हैं। इनमें एक अज्ञात मातृदेवी की मूर्तियाँ, भगवान शिव पशुपति जैसे देवता की मुद्राएँ, शिवलिंग, पीपल की पूजा, इत्यादि प्रमुख हैं। इतिहासकारों के एक दृष्टिकोण के अनुसार इस सभ्यता के अन्त के दौरान मध्य एशिया से एक अन्य जाति का आगमन हुआ, जो स्वयं को आर्य कहते थे और संस्कृत नाम की एक हिन्द यूरोपीय भाषा बोलते थे।

आर्यों की सभ्यता को वैदिक सभ्यता कहते हैं। पहले दृष्टिकोण के अनुसार लगभग १७ ईसा पूर्व में आर्य अफ़ग़ानिस्तान, कश्मीर, पंजाब और हरियाणा में बस गए। तभी से वो लोग (उनके विद्वान ऋषि) अपने देवताओं को प्रसन्न करने के लिए वैदिक संस्कृत में मन्त्र रचने लगे। पहले चार वेद रचे गए, जिनमें ऋग्वेद प्रथम था। उसके बाद उपनिषद जैसे ग्रन्थ आए। हिन्दू मान्यता के अनुसार वेद, उपनिषद आदि ग्रन्थ अनादि, नित्य हैं, ईश्वर की कृपा से अलग-अलग मन्त्रद्रष्टा ऋषियों को अलग-अलग ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त हुआ जिन्होंने फिर उन्हें लिपिबद्ध किया। बौद्ध और धर्मों के अलग हो जाने के बाद वैदिक धर्म में काफ़ी परिवर्तन आया। नये देवता और नये दर्शन उभरे। इस तरह आधुनिक हिन्दू धर्म का जन्म हुआ। हिन्दू धर्म समूह का मानना है कि सारे संसार में धर्म केवल एक ही है , शाश्वत सनातन धर्म। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति से जो धर्म चला आ रहा है , उसी का नाम सनातन धर्म है। इसके अतिरिक्त सब पन्थ , मजहब , रिलीजन मात्र है।हिन्दुओं की धार्मिक पुस्तक वेद, अरण्यक, उपनिषद, श्रीमदभगवत गीता, रामायण, पुराण, महाभारत आदि हैं। वेद विशुद्ध अध्यात्मिक और वैज्ञानिक ग्रंथ हैं। वेद पश्चिमी धर्म की परिभाषा तथा

पंथ, संप्रदाय के विश्वास तथा दर्शन से परे शाश्वत सत्य ज्ञान सागर हैं। वेदों की रचना मानव को सत्य ज्ञान से परिचित कराने के लिए की गई है। वेद पंथ, संप्रदाय, मजहब, रिलीजन आदि का प्रतिनिधित्व न करके मानव के लिए ।[11]

जैन धर्म-n जैन धर्म भारत का एक धर्म है। जैन धर्म का मानना है कि यह संसार अनादिकाल से चला आ रहा है वह अनंत काल तक चलता रहेगा एवं सभ्यता का निरंतर विकास होता रहेगा जो एक बिंदु है। जिन्होंने स्वयं को जीत लिया हो अर्थात मोह राग द्वेष को जीत लिया हो वो जैन अर्थात उनका अनुसरण करने वाले। जैन धर्म कहता है भगवान कोई अलग से नहीं होते वरन् व्यक्ति निज शुद्धात्मा की साधना से भगवान बन सकता है। भगवान कुछ नहीं करता मात्र जानता है सब अपने कर्मों के उदय से होता है। जैन धर्म कहता है कोई बंधन नहीं है तुम सोचो समझो विचारो फिर तुम्हें जैसा लगे वैसा शीघ्रातिशीघ्र करो। जैन धर्म संसार का एक मात्र ऐसा धर्म है जो व्यक्ति को स्वतंत्रता प्रदान करता है।जैन धर्म में भगवान को नमस्कार नहीं है अपितु उनके गुणों को नमस्कार है।

बौद्ध धर्म– बौद्ध धर्म एक सत्य अनादि धर्म है, यह श्रमण परंपरा से निकला हुआ धर्म है बाकी के सब पन्थ मात्र है, और ईसी. सद्धम्म से सभी पंथ, सम्प्रदाय, उत्पन्न हुये है, (एस धम्मो सनंतनो) यह धम्मपद मैं भी भगवान का उपदेश मिलता है, कि यही सनातन धर्म है, ईसे ही शुद्ध सत्यसद्धम्म मार्ग कहा गया है भगवान गौतम बुद्ध से पहिले भी बुद्ध हुए हैं, बौद्ध धर्म के संस्थापक स्वयं बुद्धत्व है, ना की भगवान गौतम बुद्ध इन्होंने तो धम्मचक्कपरिवर्तत करके महान उपदेश दिया है और बुद्धो की अनादि परंपरा आगे बढाई है, बौद्ध धर्म ईश्वर के अस्तित्व को नकारता और इस धर्म का केन्द्रबिन्दु मानव है। बौद्ध धर्म और कर्म के सिद्धान्तों को मानते है, जिनको तथागत भगवान गौतम बुद्ध ने प्रचारित किया था। बौद्ध भगवान गौतम बुद्ध को नमन करते हैं। त्रिपीटक बौद्ध धर्म ग्रंथ है। [12]

इस्लाम धर्म- इस्लाम धर्म क़ुरान पर आधारित है। इसके अनुयाइयों को मुसलमान कहा जाता है। इस्लाम केवल एक ही ईश्वर को मानता है, जिसे मुसलमान अल्लाह कहते है। हज़रत मुहम्मद अल्लाह के अन्तिम और सबसे महान सन्देशवाहक (पैग़म्बर या रसूल) माने जाते हैं। इस्लाम में देवताओं की और मूर्तियों की पूजा करना मना है। इस्लाम शब्द अरबी भाषा का (सल्म) से उच्चारणहै। इसका मतलब शान्त होना है। एक दूसरा माना (समर्पित) होना है–परिभाषा;व्यक्ति ईश्वर कै प्रति समर्पित होकर ही वास्तविक शान्ति प्राप्त करता है।इस्लामी विचारों के अनुसार – ईश्वर द्वारा प्रथम मानव (आदम) की रचनाकर इस धरती पर अवतरित किया और उन्हीं से उनका 'जोड़ा' बनाया, जिससे सन्तानोत्पत्ति का क्रमारम्भ हुआ! यह सन्तानोत्पत्ति निर्बाध जारी है। आदम (उन पर शान्ति हो) को ईश्वर (अल्लाह) ने जीवन व्यतीत करने हेतु विधि–विधान (दीन, धर्म) से सीधे अवगत कर दिया!

उन्हें मानवजाति के प्रथम ईश्चरीय दूत के पद (पेगम्बर) पर भी आसीन किया। आदम की प्रारम्भिक सन्तानें धर्म के मौलिक सिद्धांतों जैसे –एक ईश्वर पर विश्वास, मृत्यु पश्चात पुन:जीवन पर विश्चास, स्वर्ग के होने पर, नरक के होने पर, फरिश्तों (देवताओं) पर विश्वास, ईश–ग्रन्थों पर विश्वास, ईशदूतों पर विश्चास, कर्म के आधार पर दण्ड और पुरस्कार पर विश्वास, इन मौलिक सिद्धांतों पर सशक्त विश्वास करते थे एवं अपनी सन्तति को भी इन मौलिक विचारों का उपदेश : अपने वातावरण, सीमित साधनों, सीमित भाषाओं, संसाधनों के अनुसार हस्तान्तरित करते थे। कालान्तर में जब मनुष्य जाति का विस्तार होता चला गया और वह अपनी आजीविका की खोज में, पृथक–पृथक जनसमूह के साथ सुदूरपूर्व तक चारों ओर दूर–दूर तक आबाद होते रहे। इस प्रकार परिस्थितिवश उनका सम्पर्क लगभग समाप्त प्राय: होता रहा। उन्होंने अपने मौलिक ज्ञान को विस्मृत करना तथा विशेष सिद्धांतों को, जो अटल थे; अपनी सुविधानुसार और अपनी पाश्विक प्रवृत्तियों के कारण अनुमान और अटकल द्वारा परिवर्तित करना प्रचलित कर दिया!

इस प्रकार अपनी धारणाओं के अनुसार मानवजाति प्रमुख दो भागो में विभक्त हो गई।एक समूह ईश्वरीय दूतों के बताए हुए सिद्धांतों (ज्ञान) के द्वारा अपना जीवन समर्पित (मुस्लिम) होकर संचालित करते, दूसरा समूह जो अपने सीमित ज्ञान (अटकल, अनुमान) की प्रवृत्ति ग्रहण करके ईश्वरीय दूतों से विमुख (काफिर) होने की नीति अपनाकर जीवन व्यतीत करते। एक प्रमुख वचन प्रथम पेगम्बर (आदम, एडम) के द्वारा उद्घोषित किया जाता रहा (जो ईश्वरीय आदेशानुसार) था!

ईसाई धर्म- ईसाई पन्थ बाइबिल पर आधारित है। ईसाई एक ही ईश्वर को मानते हैं, पर उसे त्रिएक के रूप में समझते हैं – – परमपिता परमेश्वर, उनके पुत्र ईसा मसीह (यीशु मसीह) और पवित्र आत्मा है।

सिख धर्म0 सिख एक ही ईश्वर को मानते हैं, बराबरी, सहनशीलता, बलिदान, निडरता के नियमों पर चलते हुए एक निराले व्यक्तित्व के साथ जीते हुए उस ईश्वर में लीन हो जाना सिख का जीवन उद्देश्य है। इनका ग्रन्थ गुरु ग्रन्थ साहिब है। **धर्म के मुख्य विशेषताएँ:-**

अलौकिक शक्ति में विश्वास धर्म का संबंध अनेक ऐसे विश्वासों से है जो किसी अलौकिक शक्ति से संबंधित होते हैं। इस अलौकिक शक्ति को कुछ समूह साकार रूप में देखते हैं, जबकि कुछ समूहों में इस शक्ति का रूप निराकार माना जाता है। व्यक्ति यह विश्वास करते हैं कि यह अलौकिक शक्ति ही उन्हें जीवन में विभिन्न प्रकार के सुख–दुख, लाभ–हानि अथवा सफलताएँ और असफलताएँ देती है।

एक सैधान्तिक व्यवस्था- धर्म में केवल विश्वासों का ही समावेश नहीं होता बल्कि इन विश्वासों को अनेक सिद्धान्तों के रूप में इस तरह विकसित किया जाता है जिससे अलौकिक शक्ति के प्रति व्यक्ति के विश्वास अधिक दृढ़ बन सकें। यही सिद्धान्त 'धार्मिक वैचारिकी' का आधार होते हैं।

धार्मिक क्रियाओं व कर्मकाण्डों का समावेश- प्रत्येक धर्म में पूजा–आराधना की विभिन्न पद्धतियों, पवित्र आचरणों और तरह–तरह के कर्मकाण्डों का समावेश होता है। व्यक्तियों का यह विश्वास होता है कि इन क्रियाओं और कर्मकाण्डों के द्वारा ही अलौकिक शक्ति को प्रसन्न करके इच्छित फल प्राप्त किया जा सकता है। ईश्वर की आराधना, आत्म–संयम, तीर्थ–यात्राएँ, पवित्र कार्य, त्यागमय जीवन तथा संस्कारों की पूर्ति धार्मिक क्रियाओं और कर्मकाण्डों के ही विभिन्न रूप हैं।

प्रतीक व पौराणिक गाथाएँ- सभी धर्मों में धार्मिक विश्वासों को कुछ प्रतीकों के द्वारा स्पष्ट किया जाता है। उदाहरण के लिए, हिन्दू धर्म में मूर्ति अलौकिक शक्ति का प्रतीक है, जबकि ईसाई धर्म में 'क्रास' ईसा मसीह के आशीर्वाद का प्रतीक है। रामायण, बाइबिल तथा कुरान आदि ईश्वरीय ज्ञान के प्रतीक हैं। रेशमी वस्त्र पवित्रता के सूचक हैं, जबकि फूल और धूपबत्ती आध्यात्मिक सुगन्ध के प्रतीक हैं। पौराणिक गाथाएँ अनेक कहानियों के रूप में मनुष्य और अलौकिक शक्ति के संबंध को स्पष्ट करती हैं।

उद्वेगपूर्ण अभिव्यक्त- धर्म से संबंधित विश्वासों को लोग अनेक उद्वेगपूर्ण व्यवहारों के रूप में अभिव्यक्त करते हैं। भाव–विग्वल होकर प्रार्थना और नृत्य करना, शारीरिक कष्ट के साथ अलौकिक शक्ति में अपनी श्रद्धा दिखाना, किसी धार्मिक त्रुटि के लिए बड़े–बड़े प्रायश्चित करना तथा अलौकिक शक्ति के प्रति भय की भावना को विकसित करना उद्वेगपूर्ण अभिव्यक्ति के ही उदाहरण हैं। ऐसे व्यवहारों का बुद्धि और तर्क से कोई संबंध नहीं होता।

पवित्रता का पत्र- सामाजिक जीवन के तत्वों को दो भागों मे विभाजित किया जा सकता है– पवित्र और अपवित्र। धर्म मे सिर्फ उन्ही तत्वों को महत्व प्रदान किया जाता है, जो पवित्रता की अवधारणा से सम्बंधित होते है।सैद्धांतिक व्यवस्था भी धर्म का अनिवार्य तत्व है इसका कारण यह है कि प्रत्येक धर्म की एक सैद्धांतिक व्यवस्था होती है। इस सैद्धान्तिक व्यवस्था की सहायता से धर्म को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया जाता है।

निश्चितप्रतिमान प्रत्येक धर्म के कुछ निश्चित प्रतिमान होते है। ये प्रतिमान ईश्वरीय रक्षा का प्रतिनिधित्व करते है। यही कारण है कि व्यक्ति इन प्रतिमानों का आदर करता है तथा इन प्रतिमानों के आधार पर अपने व्यवहार का निर्धारण करता है।

मूल्यात्मक व्यवस्था- धर्म समाज में मूल्यों की एक व्यवस्था का निर्धारण करता है। यही कारण है कि धर्म को मूल्य और भावनाओं के आधार पर समझने का प्रयास किया जाता है। तर्क और विवेक को धर्म मे कोई स्थान नही है।

धार्मिक चेतना- प्रत्येक धर्म अपने मे धार्मिक चेतना को विकसित करता है। धार्मिक चेतना के कारण ही व्यक्ति धर्म का आदार करता है। आज संसार मे जो अनेक धर्म पाए जाते है, उनका जन्म और विकास धार्मिक चेतना के कारण ही हुआ।

धार्मिक मान्यताएं - समाज के धर्म की अपनी अलग-अलग मूल्य एवं मान्यताएं है, यही मान्यताएं धर्म को एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान करती है। यहि कारम है कि लोग समस्याओं एवं कठिनाइयों मे भी धर्म पर विश्वास करके साहस व धैर्य से कार्य करते है।

निषेध – प्रत्येक धर्म में लोगों के व्यवहारों के नकारात्मक पक्ष को प्रभावित करने की दृष्टि से कुछ निषेध पाए जाते हैं। निषेध का तात्पर्य यही है कि उन्हें कुछ कार्यों की मनाही की जाती है, उन्हें बताया जाता है कि क्या-क्या नहीं करना चाहिए, जैसे झूठ नहीं बोलना चाहिए, दुराचार, व्याभिचार, बेईमानी आदि नहीं करनी चाहिए। कुछ निषेध सभी धर्मों में समान रूप से पाए जाते है। जबकि कुछ विशेष समाजों से ही संबंधित होते हैं। विवाह संबंधी निषेध प्रत्येक समाज में अलग-अलग पाए जाते हैं।

धार्मिक संस्तरण – सामन्यत: प्रत्येक धर्म से संबंधित संस्तरण की एक व्यवस्था पाई जाती है। जिन लोगों को धार्मिक क्रियाएँ अथवा कर्मकांड कराने का समाज द्वारा विशेष अधिकार प्राप्त होता है, उन्हें अन्य लोगों की तुलना में संस्कारात्मक दृष्टि से उच्च एवं पवित्र समझा जाता है। ऐसे लोगों में पंडे, पुजारी, महंत, संत, पादरी, मौलवी ओझा आदि आते हैं। संस्तरण की प्रणाली में दूसरा स्थान उन लोगों को प्राप्त होता है जो धर्म के अंतर्गत बताए गए मार्ग पर चलते हैं। जो लोग धार्मिक आदेशों का पालन नहीं करते, धर्म विरुद्ध कार्य करते है। अथवा अपवित्रता लाने वाली वस्तुओं के संपर्क में आते हैं, उन्हें समाज में निम्नतम स्थान होता है।

धर्म और समाज - धर्म को मानव के सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन के उस पक्ष के रूप में भी देखा जाता है, जिसमें मानव की उदात्त आकांक्षाएँ होती हैं। यह समाज की नियामक संरचना का आधार स्तम्भ है। यह समाज की सभी नैतिक मान्यताओं, मूल्यों और आचार की मर्यादा रखता है। इस प्रकार यह समाज में सार्वजनिक व्यवस्था का आधार है और सभी नर-नारियों के लिए अन्त:चेतना का उद्गम है। यह मानव में श्रेष्ठ गुणों का संचार कर उसे सभ्य बनाता है। लेकिन साथ ही मानव को आगे बढ़ने में यह उसके सामने बाधाएँ भी उपस्थित करता है। मनुष्य जाति पर इसका सबसे बुरा प्रभाव यह देखने में आया है कि यह मनुष्य को कट्टरपंथी, असहिष्णु, अज्ञानी, अंधविश्वासी और रूढ़िवादी बना देता है। समाज के सदस्यों को एक सूत्रबद्ध करने के लिए धर्म सबसे दृढ़ सूत्र है। परंतु इसके कारण ही धार्मिक युद्ध तथा सांप्रदायिक तनाव भी पैदा हुए हैं। फिर भी हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि समाज में सांप्रदायिक तनाव के कारणों में अधार्मिक मामले और ऐसे स्वार्थों के टकराव भी होते हैं जिनका धर्म से कोई संबंध नहीं होता। उदाहरण के लिए भारतीय समाज में होने वाले सांप्रदायिक तनावों को देखा जा सकता है।

अधिकांश लोग धर्म को विश्वव्यापी मानते हुए इसे समाज की एक महत्वपूर्ण संस्था मानते हैं। परंतु मार्क्सवादी विचारकों की दृष्टि में धर्म समाज का आवश्यक अंग नहीं है।

कार्ल मार्क्स के शब्दों में," धर्म दलित वर्ग की आह है, निर्दयी विश्व की भावना है और निष्प्राण स्थितियों की आत्मा है। यह जनता के लिए अफीम का काम करता हैं।"

उनका विश्वास था कि धर्म का विश्वास शोषित लोगों के दिमाग में गरीबी और शोषण का उत्पीड़न सहने के लिए अफीम के रूप में काम करता है। [13]

अत: मानव समाज को तब तक इसकी आवश्यकता रहती है जब तक कि वह समाज के उच्च वर्ग द्वारा दलित और शोषित होता रहता है। समाजवादी समाज में इसकी कोई आवश्यकता नहीं होगी और यही सामाजिक विकास का अंतिम चरण होगा।

धर्म और आस्था- सभी धर्मों के मूल में आस्था की संकल्पना होती है। इस दृष्टि से धर्म, आस्था का बाह्य रूप है जो मानव समाज को उनके मूल लौकिक और लोकोत्तर जीवन से बाँधे रखता है। आस्था के कारण ही मानव अन्य जीवधारियों से भिन्न है। निश्चित रूप से यह व्यक्ति निष्ठ और निजी मामला है। हम एक दूसरे के विश्वासों का आदर करते हैं। इससे हमें व्यापक मानवीय आधार प्राप्त होता है।

इस प्रकार हम सबको एक सूत्र में बाँधे रखने के कारण आस्था, तर्क से अधिक महत्वपूर्ण है।

प्राचीन भारतीय चिंतनधारा के अनुसार, " आस्था ही आदमी को बनाती है जैसी आस्था वैसा व्यक्ति" (भगवद् गीता)।

बुद्ध धर्म के ग्रंथों में आस्था को मानव की पाँच कार्य शक्तियों में से एक माना गया है। (अन्य कार्य शक्तियाँ हैं ऊर्जा, मननशीलता, एकाग्रता और पूर्ण ज्ञान)।

आर. पाणिकर के अनुसार," आस्था मूलधार है और सभी मानव संबंध उसमें निहित हैं। यह एक प्रकार की प्रेमावस्था भी है। अपनी आस्था के माध्यम से आस्थावान अपने विचारों का आदान-प्रदान करता है और नास्तिक के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करता है। इस प्रकार मानव अपने दैनिक जीवन में एक सूत्रबद्ध हो जाता है।[14]

धर्म और संस्कृति- धर्म एवं संस्कृति पर प्राय: होने वाली बहस में यह भुला दिया जाता है कि भारत की पहचान सदा से धर्म एवं संस्कृति ही रही है। ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। जहां धर्म संस्कृति का आधार है, वहीं संस्कृति धर्म की संवाहिका है। दोनों ही अपने-अपने परिप्रेक्ष्य में राष्ट्र के निर्माण एवं राष्ट्रीयता के संरक्षण में सहायक सिद्ध होते हैं। जहां धर्म अपनी स्वाभाविकता के साथ सामाजिक परिवेश का आधार बनता है, वहीं संस्कृति सामाजिक मूल्यों का स्थायी निर्माण करती है। कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि धर्म का सूत्र मानव के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित करता है तो वहीं संस्कृति मानवीय संवेदनाओं को सामाजिक सरोकार से जोड़ती है। इस तरह धर्म कालांतर में संस्कृति का रक्षण करता है और संस्कृति धर्म के आधार का उन्नयन करती है।

जहां धर्म हमारे सर्वस्व का प्रतीक रहा है तो वहीं संस्कृति हमारी स्वाभाविक जीवनशैली की वाहिका रही है। दोनों ने ही भारतीय मूल्यों को जीवंत रखा है और संसार में इसी कारण से भारत का मान-सम्मान रहा है। प्राचीन समय में धर्म एक नागरिक के जीवन के उद्देश्यों का आधार था। धर्म मात्र प्रतीक नहीं होकर समग्र चेतना का स्तंभ था। परिणामस्वरूप भारत की सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक व्यवस्था मजबूत थी। इस तरह भारतीय का जीवन शांत एवं सुखी था। तब संस्कृति, भारतीयता को परिभाषित करती थी और भारत की सारी व्यवस्थाएं संस्कृति पर आधारित थीं। संस्कृति का सौरभ ही हमारे राष्ट्र का सौरभ था। इस तरह से हमारी पारिवारिक एवं सामयिक पृष्ठभूमि निरंतर विकसित होती गई। हमारे वैचारिक दृष्टिकोण का ताना-बाना हमारी संस्कृति पर ही आधारित था और हमारा संपूर्ण जीवन उन्नति के चरम पर पहुंचता रहा। धीरे-धीरे हमारी धार्मिक मान्यताएं और स्थिर होती गईं और संस्कृति का क्रमिक विकास होता गया। कहना गलत नहीं होगा कि धर्म और संस्कृति ने मिलकर हमारी भारतीयता को विकसित किया। यह भारतीय धर्म की विशेषता रही है कि वह जटिलताओं में जकड़ा न रहा और सतत चिंतन की अवधारणा को विकसित होने में सहायक सिद्ध हुआ, जिसके कारण अनेक भारतीय धर्मों का उदय हुआ। बौद्ध, जैन एवं बाद में सिख धर्म ने अपनी चिंतनशैली को विकसित किया, परंतु मूल में सनातन धर्म ही रहा। सनातन धर्म का आशय हिंदू धर्म मात्र से नहीं, बल्कि बौद्ध, जैन, सिख धर्म से भी है। भगवान बुद्ध एवं महावीर ने सनातन धर्म के संस्कार में

ही जन्म लिया और इस तरह उन्होंने अपने चिंतन को स्वतंत्र स्वरूप प्रदान कर नई धार्मिक व्यवस्था का निर्माण किया। भगवान बुद्ध ने सनातन धर्म के अनेक पहलुओं में परिपक्वता प्रदान की और उनमें व्याप्त कुंठित व्यवहारों और विचारों से मुक्त होकर भारतीय धर्म को मजबूत किया। उन्होंने धर्म की स्वतंत्र व्याख्या अवश्य की, पर मूल में उसके सांस्कृतिक चिंतन को सर्वोच्च स्थान दिया। भारतीय मानसिकता को धर्म की वास्तविकता से संयुक्त किया और हर वर्ग को धर्म से होने वाले लाभ को सुनिश्चित किया। भारतीय मूल दर्शन सनातन धर्म को दर्शाते हैं और इस तरह हिंदू, बौद्ध, जैन एवं सिख धर्म उस व्यवस्था को मजबूत करते हैं। यद्यपि इन धर्मों को अपने-अपने परिवेश में विकसित होने में धार्मिक स्वतंत्रता अवश्य रही, परंतु सांस्कृतिक एकता बनी रही। भारतीय संस्कृति के समग्र विकास में भारत के सभी धर्मों ने अपना-अपना योगदान दिया।

इस प्रकार भारत की सामाजिक व्यवस्था धार्मिक एवं सांस्कृतिक होते हुए भी वैज्ञानिक विचारों को हमेशा आत्मसात करती रही। विकास की नई संभावनाओं को संबल प्रदान करती रही। धर्म के मार्गदर्शन में ही भारतीय चिंतन व्यवस्था पनपी और कालांतर में विश्व की चिंतन व्यवस्थाओं और मान्यताओं को प्रभावित करती रही। परिणामस्वरूप भारत धर्म गुरु के रूप में स्थापित हुआ और इस तरह भारत का संबंध विश्व में प्रभावी रूप से कायम हुआ। भारत में धार्मिक दृष्टिकोण तो प्रचलित हुआ ही, साथ ही राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक संबंधों को भी पनपने और विकसित होने में सफलता मिली। विश्व के अनेक देशों के साथ कई एशियाई देशों से विशेष रूप से हमारा संबंध प्रगाढ़ बना और भारतीय धर्म एवं संस्कृति का भी सम्यक विकास हुआ। आज उन देशों में भारतीय धर्म एवं संस्कृति की विरासत पूरी तरह संरक्षित है, जो इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि भारतीय धर्म एवं संस्कृति किसी भी देश अथवा वर्ग की मान्यताओं को समाप्त नहीं करती, बल्कि उनका परिमार्जन करती है। आज हम पाते हैं कि भारतीय चिंतन पर आधारिक अनेक शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक संस्थाएं दुनिया के विभिन्न हिस्सों में स्थापित होकर काम कर रही हैं। वे हमारी विरासत का संरक्षण ही कर रही हैं। भाषा के मामले में भी देखें तो भारतीय भाषाओं ने विश्व की भाषाओं को प्रभावित किया और कई विदेशी भाषाओं के निर्माण में भारतीय भाषाओं ने योगदान दिया। एशियाई देशों की अधिकतर भाषाएं संस्कृत, पालि एवं प्राकृत पर आधारित हैं। इस तरह इन भाषाओं से विकसित विदेशी भाषाओं से भारतीय दर्शन एवं संस्कृति का सहज ही ज्ञान परिलक्षित होता है। भारतीय भाषाविदों, धार्मिक गुरुओं एवं संस्कृति को पोषित करने वाले व्यक्तियों ने विश्व में अपनी पहचान बनाकर भारत की गरिमा को हमेशा गौरव प्रदान किया। अनेक लोग भारतीय धर्म एवं संस्कृति के माध्यम से आज भी निरंतर सक्रिय हैं। आवश्यकता इसकी है कि भारतीय धर्म एवं संस्कृति के विभिन्न आयामों को आधुनिक परिवेश में परिभाषित किया जाए और इन क्षेत्रों में काम कर रहे लोगों को सरकार द्वारा प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इससे न केवल भारत का सांस्कृतिक संबंध दुनिया से मजबूत होगा, बल्कि आर्थिक एवं राजनयिक संबंध भी प्रगाढ़ होंगे।[२४]

मानव जीवन में धर्म का महत्व- 1933 में महात्मा गाँधी ने मानव जीवन में धर्म को एक महान शक्ति बताया है और कहा-''धर्म वह शक्ति है जो व्यक्ति का बड़े-बड़े संकट में ईमानदार बनाये रखती है और यह इस संसार में दूसरे में भी व्यक्ति की आशा का अन्तिम सहारा है।'' मानव जीवन में धर्म के निम्न कार्य बताये जा सकते है-[16]

. व्यक्ति का व्यक्तित्व एवं अस्तित्व को सुनिश्चित करता है।

. जीवन को आधार प्रदान करता है।

.यह मानव मस्तिष्क को शान्ति देता है और हृदय में आशा का संचार करता है।

. मानव जीवन कों मानसिक दृढता प्रदान कर नैतिक रखता है।

. मानव समूह को व्यवहारात्मक, विचारात्मक, परम्परात्मक एवं भावात्मक रूप से जोडें रहता है।

. धर्म मनुष्य को संस्कृति एवं सभ्यता के निर्माण एवं निर्वाह का आधार प्रदान करता है।

.यह व्यक्ति को परिवार, समाज एवं देश से जोडता रहता है।

. धर्म ने मानव जीवन के सम्पूर्ण इतिहास को नया रूप देकर संजोया।

.धर्म मनुष्य को अध्यात्मिकता एव नैतिकता का मार्ग दिखाता है।

.धर्म मनुष्य को वास्तविक जीवन की परिस्थितियों से संधर्ष करने की शक्ति का संचार करता है।

. मनुष्य के अन्तिम सत्य (मोक्ष) को प्राप्त करने हेतु प्रथम सीढ़ी धर्म का ही है।

. धर्म व्यक्ति की भौतिक एंव आध्यात्मिक उन्नति को आधार प्रदान करता है। कहा भी गया है– यतो अभ्युदय–निश्श्रेयस सिद्धि: स धर्म:। (जिससे व्यक्ति की शारीरिक और आध्यात्मिक उन्नति हो वही धर्म है)[17]

मानव के सम्पूर्ण इतिहास पर धर्म की छाप है इसकी पुष्टि करते हुये गिस्र्बट ने लिखा है–''अमरीकी और फ्रान्सीसी क्रांन्तियों पर धर्म की छाप थी और 09 जनवरी 1905 तक रूसी क्रान्तियों पर भी प्रबल धर्मिक प्रभाव था। आधुनिक समय में महात्मागाँधी और आचार्य विनोबा भावे के नेतृत्व में होने वाले महान सामाजिक और आथिक आन्दोलनो का आधर धर्म है।''

इस प्रकार से हम देखते हैं कि धर्म व्यक्ति के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। धर्म आस्था का प्रतीक है, जिससे व्यक्ति एक दूसरे से जुड़ा हुआ रहता है। धर्म व्यक्तित्व तथा व्यक्ति निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हम संस्कृति और धर्म का संवर्धन कर एक श्रेष्ठ मानव के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । धर्म को संस्कारों का जन्मदाता भी कहा जाता है क्योंकि एक धार्मिक आदमी ही संस्कारों से ओतप्रोत होता है और आगे बढ़ाता है। वह अच्छे समाज और व्यक्ति निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, इसीलिए हमें धर्म को अनेक आयामों से देखने पर हम प्राप्त करते हैं की धर्म ही सब का मूल है तथा सृष्टि के निर्माण में भी धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । वैसे हमारे आदि ग्रंथ और वैदिक संस्कृति में बताया गया है। संसार में जितनी भी वस्तुएं हैं चाहे वह सजीव हो या निर्जीव सभी ने धर्म को धारण कर रखा है और उसी के आधार पर वह अपने अपने कार्य को निवृत्त करती हैं। इसलिए खासकर भारतीय परिप्रेक्ष्य में धर्म को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है और यही भारतीय संस्कृति का मूल आधार है।

संदर्भ-ग्रंथसूची

1. श्रीमद्भगवद्गीता – हरिराम पाण्डेय।

2. भारतीय इतिहास –डॉ रमाशंकर द्विवेदी।

3. न्यायदर्शन –महर्षि गौतम।

4. मनुस्मृति।

5. महाभारत – शान्तिपर्व।

6. वात्स्यायन।

7. महाभारत, वनपर्व।

8. श्रीमद्भगवद्गीता।

9. पूर्व मीमांसा – महर्षि जैमिनी।

10. मध्यकालीन पाश्चात्य दर्शन – याकूब मसीहा।

11. भारतीय धर्म और दर्शन– प्रो हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा।

12. धर्म और दर्शन– डॉ शोभा निगम।

13. भारतीय धर्म की विवेचना– डॉ चन्द्रकान्ता

14. समकालीन पाश्चात्य दर्शन– बसन्त कुमार लाल।

15. भारतीय संस्कृति का इतिहास– डॉ मदन कुमार आचार्य।

16. भारतीय समाज– डॉ अशोक मिश्रा।

17. मानव और धर्म– डॉ एस सी देवाना।